RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-11
November-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i11.034

'धूमिल' की कविता में सामाजिक चेतना

डॉ. श्रुति शर्मा

सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 14 November 2020

Keywords
साम्यवाद, अवचेतन, मानवीय उदारता, सहिष्णुता, कुंठा, जीवन–मूल्य।

***Corresponding Author**
Email: drshrutisharma68@gmail.com

ABSTRACT

मनुष्य समाज की एक प्रमुख इकाई है। वह समाज के सुख–दुःख आशा–निराशा, हर्ष–विषाद आदि सभी को अपने जीवन में आत्मसात् करता है। मनुष्य ही समाज की आत्मा है और समाज–उसका समष्टिगत रूप शरीर है। साहित्यकार मानव आत्मा का शिल्पी कहा जाता है। वह समाज की अखण्ड प्रतिभा के रूपाकार के लिए मानव को आलम्बन रूप में अपनाता है और अपने साहित्य में उसे चित्रित करता है। एक सच्चा कवि या साहित्यकार मानवीय उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, मानव समानता आदि जीवनगत मूल्यों का समसामयिक संदेश देता चलता है। वह मनुष्य के जीवन की कशमकश को तोड़ देने वाली निराशाओं, कुंठाओं की उपेक्षा करके उनसे जूझने की शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार वह मनुष्य को उसके संकुचित दायरे से उठाकर सामाजिकता के परिवेश में बिठाकर उसके व्यक्तित्व का उन्नयन और विस्तार चाहता है। हर नये युग में जीवन–मूल्यों का नया संस्कार करके वह नया कल्प तैयार करता है।

डॉ. हरिकृष्ण पुरोहित का कथन इस संदर्भ में द्रष्टव्य है–"अवचेतन के चेतन में अभिव्यक्त होने पर उसकी अन्धशक्तियों का विश्लेषण किये जाने पर विकास सम्भव है। हमारा आत्म अस्तित्व बना रहे, हमारा जीवन विकासमान हो, उसके लिए आवश्यक है कि हम अपने आपको अभिव्यक्त करते रहें, हमारा आत्म अवचेतन व्यक्त होता रहे, अन्यथा इसके अभाव में उसका विस्फोट अत्यन्त भयंकर हो सकता है, अस्तु, कला, प्राण–चेतना की ऐसी ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति है।"[1] साहित्यकार अपनी रचना द्वारा ऐसी ही चेतना को जागृत करने का प्रयास करता है।

सुदामा प्रसाद पाण्डेय 'धूमिल' की रचनाओं में सामाजिक चेतना का स्वर विशेष रूप से व्यक्त हुआ है। उन्होंने समाज को द्रष्टा बन अपनी चेतन प्रज्ञा–शक्ति के द्वारा मनुष्य की खूबसूरत और बदसूरत जीवन की बहुरंगी तस्वीर खींचकर मनुष्य को बदसूरत नारकीय जीवन से दूर ले जाने का भरसक प्रयत्न किया है। कवि धूमिल ने सामाजिक अव्यवस्था के विरोध में उभरती सामाजिक चेतना को अपने काव्य में वर्णित किया है। 'धूमिल' ने अपनी जनवादी विचारधारा के माध्यम से शोषण मुक्त वर्ग विहीन समाजवादी सामाजिक व्यवस्था को जनकल्याण के हेतु स्थापित करना अपना कर्तव्य समझा है। 'धूमिल' की सामाजिक चेतना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भावों से ओतप्रोत है। उदाहरणार्थ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"कहने का मतलब यह है कि भाइयों / जनतन्त्र जनता से नहीं
घर की जंग से शुरु होता है / और फिर पहली बार यह जानकर
वह खुश होगा कि मतपेटी में / मत–पत्र के साथ वह अपनी समझ नहीं डाल आया है,
आज भी अगली लड़ाई के लिए उसके दाँत और नाखून/ एक रोटी पर सुरक्षित हैं।"[2]

'धूमिल' की सामाजिक चेतना इतनी प्रबल है कि वह अपनी प्रज्ञा–शक्ति के द्वारा समाज की वर्तमान व्यवस्था का आकलन तुरन्त ही कर लेता है और उसका यथार्थ चित्रण कर अपनी प्रिय जनता को सचेष्ट कर देता है। आर्थिक दृष्टि से पूँजीवादी और विदेशी शोषण की शिकार जनता की सामाजिक एवं आर्थिक विषमता को कवि ने निम्नवत् ढंग से दर्शाया है–

"तुम सोचते हो देश / आदमी हितों की कुंजी है
फिर शुरु होती है रोटी की मार / यह सबसे कठिन है !
रिश्तों में फोड़कर दरार
बेगानापन उगता है। परिचय / डूबने लगता है भय के सैलाब से
सहसा एक डमरू चेहरा तुम्हारी आत्मीयता में / बजता है दुद्धा जुबान
आश्वासनों के मुनक्का शब्द खोलती है / वादों की घाटी में
तुम देखते हो रोटियों का क्षितिज / मगर कहाँ है भविष्य
तुम्हारी आँखों में हिंसक आग जलती है / दाँतों के खिलाफ चलते हैं दाँत
निचला जबड़ा ऊपरी जबड़ों को पीसता है।"[3]

'धूमिल' ने वैयक्तिक हित को प्रमुखता प्रदान की है, क्योंकि समाज देश राज्य सब कुछ व्यक्ति के लिए ही है। ये सभी व्यक्ति से ही बनते हैं इसलिए व्यक्ति हित सर्वोपरि होना चाहिए। फलतः उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यक्ति को शोषण, दमन, अनीति और अन्याय से बचाकर उसे सामाजिक राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में पूर्ण अधिकार दिलाने का प्रयास किया है–

"वैसे हम समझते है कि सच्चाई /हमें अक्सर अपराध की सीमा पर
छोड़ आती है / आदतों और विज्ञापनों से दबे हुए आदमी का सबसे अमूल्य क्षण सन्देहों में / तुलता है।
हर ईमान का एक चोर दरवाजा होता है।/ जो संडास की बगल में खुलता है

RRIJM 2015, All Rights Reserved

दृष्टियों की धार में बहती नैतिकता का / कितना भद्दा मजाक है
कि हमारे चेहरों पर /आँख के ठीक नीचे ही नाक हैं।"[4]

समाज की संरचना एवं उसके संगठन में अर्थ की विशेष भूमिका होता है। आर्थिक ढाँचे की मजबूती से ही समाज मजबूत होता है। ऐसा समाज अनवरत विकसनशील होता है। आर्थिक ढाँचे की मजबूरी में श्रम का विशेष योगदान होता है। जिस देश व समाज का श्रम धनपशुओं, पूँजीपतियों, जमींदारों, सेठ–साहुकारों के हाथों की कठपुतली बना हुआ हो वह देश व समाज विकसित कैसे हो सकता है। गाँव का किसान जमींदारों एवं सेठ–साहूकारों का गुलाम हो और शहर का मजदूर मिल–मालिकों एवं पूँजीपतियों का, तो ऐसी स्थिति में 'धूमिल' का कविमन चुप कैसे बैठ सकता हैं? 'धूमिल' ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किसानों–मजदूरों में एक नयी चेतना का संचार करने का प्रयास किया है–

"मैंने महसूस किया कि मैं वक्त के /एक शर्मनाक दौरे से गुजर रहा हूँ
अब ऐसा वक्त आ गया है जब कोई /किसी का झुलसा हुआ चेहरा नहीं देखता है
अब न तो कोई किसी का खाली पेट/देखता है, न थरथराती हुई टाँगें
और न ढला हुआ सूर्यहीन कन्धा देखता है/सबने भाईचारा भुला दिया है
आत्मा की सरलता को मारकर/मतलब के अँधेरे में (एक राष्ट्रीय मुहाविरे के बगल में)
सुला दिया है /सहानुभूति और प्यार,
अब ऐसा छलावा है, जिसके जरिये /एक आदमी दूसरे को, अकेले
अँधेरे में ले जाता हैं और / उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है।"[5]

'धूमिल' प्रगतिशील विचारधारा के रचनाकार हैं। नवीनता के प्रति आग्रह भाव एवं पुरातनता के प्रति उपेक्षा भाव उनमें विशेष रूप से देखा जा सकता है। फलतः उन्होंने अपने नवीन विचारों को व्यक्ति एवं समाज के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। उनकी सामाजिक चेतना रूढ़ियों, कुप्रथाओं, कुरीतियों को उखाड़ फेंकना चाहती है। उनका मानना है कि समाज का सर्वहारा वर्ग जब तक इनमें उलझा रहेगा तब तक उनमें चेतना का संचार नहीं होगा। इस सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा भी है कि–"समाज के संगठन और हितों की रक्षा करने वाले नियमों का संकलन ही नीति है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी अपेक्षा करनी होगी, लेकिन मनुष्य रूप में वह समाज का अविभाज्य अंग है। साधारण व्यक्ति की अपेक्षा उसमें प्रतिभा अधिक है। अतएव उसी अनुपात में उसका दायित्व भी अधिक है। जिस समाज ने उसे जीवन के उपकरण दिए, बौद्धिक और भागवत परम्पराएँ दी, उसका ऋण–शोधन करना उसका धर्म है।"[6] अपनी सामाजिक चेतना के परिणाम स्वरूप ही 'धूमिल' का कवि सामान्य मानव को बार–बार कर्म करने के लिए प्रेरित एवं उत्साहित करता है। जनवादी कवि होने के कारण 'धूमिल' जनसामान्य में नवीन आशा का संचार करना चाहते हैं, उसमें एक जिजीविषा पैदा करना चाहते हैं। जीवन की क्षण–भंगुरता के सत्य को उद्घाटित कर 'धूमिल' सामाजिक चेतना का प्रचार–प्रसार चाहते हैं। वे कहते हैं–

"ये जबड़े जाम क्यों हैं / जिन्होंने खून की रपट पढ़ी है?
मैं सुनता हूँ। उत्तर धीरे से /मुझमें उभरता है, जैसे काल कोठरी की
दीवार पर उभरते हैं शब्द / कल सुनना मुझे–
जब दूध के पौधे झर रहे हो सफेद फूल / निःशब्द पीते हुए बच्चे की जुबान पर
और रोटी खाई जा रही हो चौके में / गोश्त के साथ।
जब खटकर (कमाकर) खाने की खुशी / परिवार और भाईचारे में बदल रही हो
दृ कल सुनना मुझे /आज मैं लड़ रहा हूँ।"[7]

स्पष्ट है कि सुदामा प्रसाद पाण्डेय 'धूमिल' ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना का प्रसार प्रचार करने का प्रयास किया है। उन्होंने जनसामान्य के अन्तर्मन में छिपी हुई निराशा एवं कुंठा को दूर कर उसके भीतर आशा सहिष्णुता, औदार्य प्रेम आदि की भावनाओं को भरने का भी कार्य किया है।

"परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत एवं अटल नियम है। मानव समाज भी उसी प्रकृति का अंश होने के कारण परिवर्तनशील है।"[8] "इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व का कोई भी समाज ऐसा नहीं है, जो परिवर्तन के दौर से न गुजरा हो। भारतीय समाज में जन–जीवन सामाजिक रूढ़ियों, पाखण्डों, रीति–रिवाजों, परम्पराओं व धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियों को बढ़ावा देता रहा। अंधविश्वासी, अशिक्षित, स्वार्थी पुण्डा–पुरोहित वर्ग सामाजिक मान्यताओं विचारों तथा धार्मिक चिन्तन पर नियन्त्रण रखने के लिए सामाजिक परिवर्तन का विरोध करता रहा। जिसमें रूढ़िवादी वर्ग से सहायता मिलती रही। बहुदेववाद के सहारे पंडा–पुरोहित वर्ग का दिन–प्रतिदिन लाभ–बढ़ता रहा। इस युग में जो जाति जितना ही अन्धविश्वासों को प्रश्रय देती रही, वही सर्वोच्च पदाधिकारी बनी। नादान, मानव इन क्रूर रीति–रिवाजों की उपेक्षा करके स्वतन्त्र जीवन–जीने में सर्वथा असमर्थ होता गया।"[9] किन्तु स्थिर समाज की परिकल्पना तो नहीं की जा सकती है। इन बर्बर और क्रूर रीति–रिवाजों के विरुद्ध ज्वालामुखी तो फूटना ही था। क्रान्ति अर्थात् परिवर्तन तो होना अवश्यभावी ही था। फलतः "भारतवर्ष मानो दीर्घ निद्रा के बाद उठकर नवीन आलोक की ओर देख रहा था। कभी उसके मन में संदेह का उदय होता था, कभी आशा का संचार होता था। हर नई वस्तु को देखने के बाद वह एक बार अपनी याददाश्त पर जोर डाल देता था। वह जान लेना चाहता था कि जो कुछ वह नया देख रहा है वह उसके पुराने अनुभवों के विरुद्ध तो नहीं है। पुराना वैभव उसे अभिभूत किए हुए था और नवीन बातों को अस्वीकार करने का कोई उपाय न था।"[10] अस्तु सामाजिक क्रान्ति से आशय उस परिवर्तन से है, जो सामाजिक ढाँचे में आमूलदृचूल परिवर्तन लाती है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री गिन्सवर्ग के शब्दों में–"सामाजिक परिवर्तन से मेरा तात्पर्य सामाजिक ढाँचे में अर्थात् समाज के आकार इसके विभिन्न अंगों अथवा इसके संगठन के प्रकारों की बनावट एवं सन्तुलन में होने वाले परिवर्तन से है।"[11]

कवि 'धूमिल' ने सामाजिक रूढ़ियों, पाखण्डों, आडम्बरों के विरुद्ध मोर्चा खोला और कविता का पैना खड्ग लेकर इन अव्यवस्थाओं के विरुद्ध उठ खड़े हुए। वे सम–सामयिक समाज के ढाँचे में क्रान्ति द्वारा परिवर्तन लाना चाहते थे, जो सम्पूर्ण समाज को अपने काले आवरण से ढँके जा रही थी। इसके लिए वे अपने चहेते सामान्य जन को

उकसाकर इस सामाजिक दुर्व्यवस्था को समाज से दूर हटाने के लिए कहते हैं, क्योंकि इन सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों ने मानव को जीता–जागता लाश के रूप में परिवर्तित कर दिया है। कवि कहता है–

"हाय ! इसके बाद / करमजले भाइयों के लिए जीने का
कौन सा उपाय
शेष रह जाता है, यदि भूख पहले प्रदर्शन हो और बाद में
दर्शन बन जाय और अब तो ऐसा वक्त आ गया है कि
सच को भी सबूत के बिना बचा पाना मुश्किल है।"[12]

कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से जीर्ण–शीर्ण मान्यताओं, परम्पराओं एवं रूढ़ियों को भी तोड़ना चाहता है। सामाजिक विसंगतियों के विरोध में आवाज उठाना चाहता है। जन सामान्य को क्रान्ति के लिए प्रेरित करता है। सम्भवतः इसीलिए 'धूमिल' का कवि मन कह उठता है–

"यह सही है कि नारों को / नयी शाख नहीं मिलेगी
और न आरा मशीन को /नींद की फुरसत
लेकिन यह तुम्हारे हक में है / इससे इतना तो होगा ही
कि रूखानी की मामूली–सी गवाही पर / तुम दरवाजे को
अपना दरवाजा
और मेज को / अपनी मेज कह सकोगे।"[13]

मार्क्सवादी विचारधारा का परिपोषक होने के कारण 'धूमिल' का मानना है कि इन निहत्थे किसान–मजदूरों के पास हारने के लिए हाथ की हथकड़ियों एवं पाँव की बेड़ियों के सिवा और कुछ नहीं हैं, जबकि जीतने के लिए पूरा साम्राज्य भरा पड़ा है। कवि सामान्य जनता को क्रान्ति के लिए उकसाता है। उसका मानना है कि अब क्रान्ति के सिवा और कोई रास्ता नहीं है जिससे जनता के अधिकारों की प्राप्ति हो सके। 'धूमिल' कहते हैं–

"और विपक्ष में / सिर्फ कविता है
सिर्फ हज्जाम की खुली हुई किसमत में एक उस्तुरा
चमक रहा है / सिर्फ भंगी कर एक झाड़ू हिल रहा है।
नागरिकता का हक हलाल करती हुई/ गन्दगी के
खिलाफ।"[14]

कवि के अनुसार, जिस प्रकार तूफान के आने से पूर्व एक शान्ति रहती है, उसी प्रकार समाज में भी चारों ओर एक विचित्र सी शान्ति है, जो मात्र एक हलचल की प्रतीक्षा कर रही है। ये सम्पूर्ण व्यवस्था में तूफान ला देगी। इस सन्दर्भ में एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है कि–"सामाजिक परिवर्तन के बारे में निश्चित रूप से पूर्वानुमान लगाना कठिन है। अतः उसके बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम सामाजिक परिवर्तन के बारे में बिल्कुल ही अनुमान नहीं लगा सकते अथवा सामाजिक परिवर्तन का कोई नियम ही नहीं है। इसका सिर्फ सही अर्थ है कि कई बार आकस्मिक कारणों से भी परिवर्तन होते हैं। जिनके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता है।"[15] जिस प्रकार वृक्षों पर लगे पुराने पत्ते गिर जाते हैं, और उसके गिरने के उपरान्त नई–नई कोपलें प्रस्फुटित होने लगती हैं, ठीक उसी प्रकार पुरानी रूढ़ियों, परम्पराएँ एवं मान्यताएँ जो मानव समाज को गर्त में ले जा रही हैं, वे सब टूट–टूट कर गिर जाएँगी और नवीन मान्यताएँ व परम्पराएँ स्थापित होंगी–

"अपने बचाव के लिए / खुद के खिलाफ हो जाने के सिवा
दूसरा रास्ता क्या है? / मैं आपसे ही पूछता हूँ
जहाँ पसीना पास से अधिक बदबू /देता है
अपना हाथ खोकर / चिमनी के नीचे खड़ा है
निहत्था मजदूर /वहाँ आप मुझे मजबूर क्यों करते हो?"[16]

सामाजिक असमानता के कारण जनसामान्य में कुण्ठा–निराशा बढ़ती ही जा रही है। सामाजिक उन्नति का स्वप्न सँजोये हुए कवि को शासन–प्रशासन के नियम–कानून ढकोसले लग रहे हैं। सामाजिक जीवन में अविश्वास, कटुता, वैमनस्य आदि को बढ़ता हुआ देख कर 'धूमिल' बौखला उठते हैं। देश व समाज विविध समस्याओं एवं उन समस्याओं से जूझने की प्रेरणा कविवर की रचनाओं में मिल जाता है। संदर्भित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

"कोसों दूर जब आँसू अंगारे बनते जा रहे हैं / शब्दों के
कुहराम में सिर्फ बदला गूँजता है,
चेहरा भर आईने के सामने / बालों में रोती हुई कंघी से एक
कमसिन भुजाली
खून का हिसाब चुकता करने की कसम / खाती है।"[17]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कवि 'धूमिल' समाजवाद के परिपोषक हैं, वे चाहते है कि समाज में सबको समान अधिकार मिले। किसान–मजदूरों को उनके परिश्रम का उचित मूल्य मिले। वे सामाजिक विषमता को देखकर अत्यन्त व्यथित होते हैं। जन सामान्य को इस विषमता के खिलाफ क्रांति करने के लिए प्रेरित करते हैं। उनका मानना है कि माँगने से भीख नहीं मिलती, लेकिन छीनने से तख्तोताज मिल जाता है। इस तरह वे समाज की तमाम विसंगतियों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए जनता को कर्मशील बनाकर धनपशुओं को समाप्त करने की बात करते हैं। 'धूमिल' ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मानव–मानव के मध्य बढ़ती हुई दूरी को समाप्त कर प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित करना चाहते हैं, जिससे उन्हें अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो सके। सामाजिक समरसता का साम्राज्य हो। ऐसी स्थिति में ही समाज की तमाम विसंगतियाँ समाप्त हो सकती हैं। न कहीं पूँजीवादी व्यवस्था होगी और न ही वर्ग–संघर्ष पनपेगा। कोई किसी का शोषण नहीं कर सकेगा। सभी लोग अपने कर्त्तव्यों के साथ–साथ अधिकारों के प्रति सचेष्ट होंगे। इस तरह जीवन के सभी प्रकार के द्वन्द्वों की समाप्ति पर ही सामाजिक समरसता उत्पन्न होगी आनन्द की प्राप्ति होगी।

संदर्भ–

1. डॉ. हरिकृष्ण पुरोहित (1970) आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव, उदयपुर : उपमा प्रकाशन, पृ. 343
2. धूमिल (1984) सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 80
3. वही, पृ. 96–97
4. धूमिल (1972) संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 76–77
5. वही, पृ. 108–109
6. भारत भूषण अग्रवाल (1962) संपादन, डॉ. नगेन्द्र के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध, दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्ज़, पृ. 47
7. धूमिल (1977) कल सुनना मुझे, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 88

8. एम.एल. गुप्ता एवं डी.डी. शर्मा (2019) समाज शास्त्र, आगरा : साहित्य भवन, पृ. 291
9. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल (1997) भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, दिल्ली : प्रेम प्रकाशन, पृ. 44
10. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी (1950) हिंदी साहित्य की भूमिका, मुम्बई : हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, पृ. 142
11. गिन्सबर्ग रू सोशल चेन्ज ब्रिटिश जनरल आफ सोशियालॉजी, पृ. 205
12. धूमिल (1977) कल सुनना मुझे, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 87
13. धूमिल (1984) सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 82–83
14. धूमिल (1972) संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 68
15. एम.एल. गुप्ता एवं डी.सी. शर्मा (2019) समाज शास्त्र, आगरा : साहित्य भवन, पृ. 215
16. धूमिल (1972) संसद से सड़क तक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 61
17. धूमिल (1984) सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 108

RRIJM 2015, All Rights Reserved